Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

दोयम से पहले दर्जे की यात्रा

डॉ. उमा मीणा
सहायक प्राध्यापक,
मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत।

Article Info
Volume 4, Issue 2
Page Number : 34-39
Publication Issue :
March-April-2021
Article History
Accepted : 10 March 2021
Published : 15 March 2021

सारांश:– आत्मकथाओं में हम देखते हैं कि ये वे स्त्रियाँ हैं जिन्होंने शिक्षा,राजनीति साहित्य और व्यावसायिक क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है । इन्होने यह सिद्ध करके दिखाया है कि दोहरी जिम्मेदारियां निभाते हुए भी ये किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं हैं । समाज के विकास में उनकी भूमिका पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं है ।लेकिन स्त्री को समाज में पुरुष के बराबर का दर्जा तभी मिल सकता है जबकि स्त्री को दोयम दर्जे का समझने की मानसिकता से पुरुष समाज मुक्त नहीं हो जाता ।

मुख्य शब्द– आत्मकथा, दोयमशिक्षा, राजनीति, साहित्य, यात्रा, दर्जे।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के उपरांत भारतीय नारी की स्थिति में राजनितिक और वैधानिक दृष्टी से बहुत से परिवर्तन हुए लेकिन जो परिवर्तन हुए उनके अनुसार समाज में परिवर्तन नहीं हो सका . भारतीय संविधान ने उसे नागरिक के सभी अधिकार प्रदान किये , उसके कर्मक्षेत्र में भी अधिक विविधता तथा व्यापकता आ गयी . उत्तराधिकार, दहेज़, विवाह–विच्छेद सम्बन्धी विधान बन जाने से उसके वैधानिक अधिकारों में भी वृद्धि हुई किन्तु भारत में कोई सामाजिक क्रांति नहीं हुई अत: समाज–व्यवस्था में कोई क्रन्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ।

विगत युगों में स्त्री को स्वतंत्र रूप से किसी मार्ग या दिशा को चुनने का अधिकार नहीं था.अभी तक स्त्री के कर्तव्य और उसकी जीवन शैली का निर्धारण पुरुष ही करता आया है.भारतीय समाज में स्त्रीत्व नैतिकता, मर्यादा और मातृत्व की दुहाईयों में ही विलीन होता रहा है .उसकी प्रतिभा,कर्मठता,निर्णय क्षमता,सहनशीलता सभी को दोयम दर्जे का बनाकर उसके अधिनस्थ रूप को ही सराहा गया ।शिक्षा के प्रसार और समाज सुधार आंदोलनों की प्रतिक्रिया में स्त्री अस्मिता को एक नयी दिशा मिली ।

आधुनिक युग की स्त्री सामाजिक अंत: विरोधों की सृष्टि है । स्त्री का व्यक्ति– पक्ष उसकी सामाजिक स्थिति और परम्परावादी दृष्टी से निरंतर प्रभावित होता रहता हैइसीलिए विद्रोह और संकोच की द्वंदात्मक स्थिति उसके व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती हैं । स्त्री में आसक्ति और मोह के बंधन दिखाई देते हैं, वह आत्ममुग्ध होकर नहीं सोचती बल्कि संवेगात्मक रूप में सबसे बंधी रहती है। मन से पुरुष की निर्भरता को ख़त्म न होने के कारण वह अभी तक सभी जगह अंतत: मात खाती जा रही है । वह जितनी स्वतंत्र बाहर से नज़र आती है उतनी स्वतंत्र है नहीं । आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और परिवर्तन के दौर से गुज़र रही आज की स्त्री को दोहरा संघर्ष करना पड रहा है । जहाँ उसे सफलता कम और विफलता अधिक मिल रही है ।

यहाँ मैं कुछ स्त्री आत्मकथाओं के माध्यम से बताना चाहुंगी कि स्त्रियों ने किस प्रकार पुरुषसत्तात्मक समाज में विपरीत परिस्थितयों में संघर्ष करते हुए अपने को दोयम दर्जे से उठाकर प्रथम दर्जे पर लाने का रास्ता तय किया और उसमें

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

वे कितनी सफल रहीं । इन लेखिकाओं ने भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियों के सामाजिक अधिकार और स्वावलंबी व स्वतंत्र होती स्त्री के प्रति लोगों की मानसिकता को उजागर किया है । अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या 'में व्यापारिक क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों और अनुभवों को प्रभा खेतान ने पाठकों के समक्ष रखा है. आर्थिक रूप से सबल बनने के लिए प्रभा ने कड़े प्रयास किये. अपने प्रथम प्रयास में प्रभा ने फिगरेट नाम से हेल्थ क्लब खोला और बकौल प्रभा खेतान 'पहले यह हेल्थ क्लब छोटा था, एक कमरे में सीमित मगर धीरे-धीरे काम चल निकला, कुछ पैसे जमा हुए तो मैंने इसे बड़े रूप में खोलना चाहा । 1970, इसी हेल्थ क्लब से मुझे पच्चीस से तीस हजार रुपये महीने की आय हो जाती थी. अपने आप में यह एक बड़ी आर्थिक उपलब्धि थी.'[1] और प्रभा यह महसूस करने लगी 'बाहरी दुनिया में कदम रखते ही मेरी कार्यक्षमता दुगुनी हो गई. एक असह्य यथार्थ से पलायन कर रही थी, मैं केवल डाक्टर की होकर नहीं रह गई थी. लोगों से मैं कहना चाहती, डॉक्टर साहब से अलग भी मेरी कोई हैसियत है. मैं भी कुछ हूँ. दुनिया देखने का, पारम्परिक दायरों के अतिक्रमण का यह दौर था.मैं व्यापारी महिला बन चुकी थी ।'[2] लेकिन 'एक व्यापारी महिला बनने के बाद और पुरुष के समान ही आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनने के बाद भी प्रभा यह अनुभव करती है कि 'औरत के आर्थिक अवदान को नकारने की परंपरा रही है।'[3]

भारतीय परिवेश में पुरुषों का दायित्व पैसा कमाना और संतानोत्पत्ति करना ही है, पत्नी की भावनाओं को, उसकी इच्छाओं को समझने का न तो उसका कोई कर्त्तव्य है, और न ही उसके पास समय। ऐसी स्थिति में एक पढ़ी-लिखी स्त्री की मानसिक स्थिति कितनी गड़बड़ा जाती है, इसका चित्रण आत्मकथाओं में मिलता है। वह अपने पति से सम्मान और समान अधिकार चाहती है। प्रतिष्ठित साहित्यकार के रूप में अपने को स्थापित करने वाली मन्नू भंडारी राजेन्द्र के साथ सुखद दाम्पत्य जीवन का सपना लिए परिवार के विरोध के बावजूद राजेन्द्र से विवाह तो कर लेती है किंतु विवाह के उपरांत राजेन्द्र 'समानान्तर जिंदगी' का आधुनिकतम पैटर्न थमाते हुए उसे एक निर्धारित दायरे में बद्ध कर देते हैं जिसमें 'घर की सारी जिम्मेदारियाँ और समस्याएँ-आर्थिक से लेकर दूसरी तरह की-मेरे जिम्मे थीं जिसमें मुझे राजेन्द्र की दिलचस्पी की ही नहीं, सहयोग की भी जरूरत रहती थी लेकिन उसे तो राजेन्द्र ने मेरा अधिकार-क्षेत्र घोषित कर रखा था। मेरे अधिकार-क्षेत्र में कभी भी न झाँकने की, न किसी तरह की दिलचस्पी लेने की और न ही कोई हस्तक्षेप करने की बेहद उदारवादी मुद्रा ओढ़कर एक बड़ी वाजिब और तर्कसंगत अपेक्षा ये करते थे कि मैं भी इनके अधिकार क्षेत्र में न कभी झाकूँ, न किसी तरह की दिलचस्पी लूँ।'[4]मन्नू तो राजेन्द्र के साथ आई थी 'सब तरह के अलगाव को दूर करके एक हो जाने के लिए, पूरी तरह घुल-मिल जाने के लिए'[5] और इस उम्मीद और आश्वासन के साथ कि 'सहजीवन के सुख-दु:ख और जिम्मेदारियाँ भी मिल बाँटकर ही उठाएंगे।'

राजेन्द्र यादव मानते हैं कि पत्नी को नर्स की भाँति होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में मन्नू भण्डारी कहती हैं कि 'अपने को विशिष्ट मानने वाले राजेन्द्र की धारणा पत्नी की भूमिका के बारे में विशिष्ट ही नहीं, सचमुच चौकाने वाली थी। इनके हिसाब से पत्नी को एक नर्स की भाँति होना चाहिए जो सिर्फ पति की सेवा करे, बदले में उससे अपेक्षा कुछ न करे।'[6] मन्नू भण्डारी एक कामकाजी महिला रही हैं। उनके समक्ष अपनी बेटी को पालने की समस्या और नौकरी की जिम्मेदारी दोनों रहीं। वह चाहती हैं कि अपनी बच्ची को उसके पिता के पास छोड़कर वह नौकरी पर जाए लेकिन पति को यह बर्दाश्त नहीं होता कि पत्नी नौकरी करने जाए और वह घर में बच्ची के साथ रहे क्योंकि उन्हें भय है कि उनके लेखक मित्र उन्हें कहेंगे कि वे 'आयागिरी' कर रहे हैं। इस पर मन्नू का मन विद्रोह करता है। वह कहती हैं कि 'कई बार मन होता कि पूछूँ कि माँ अगर बच्चे को रखे तो माँ और अगर बाप बच्चे को रखे तो वह बाप न होकर आया कैसे हो गया?'[7]

ये तो विवाह करके एक पुरुष के साथ दाम्पत्य संबंध में बंध जाने वाली आधुनिक, आत्मनिर्भर, कामकाजी स्त्री की स्थिति है जो दोहरे दायित्व का निर्वाह करते हुए भी अपने पति से सदा उपेक्षित रहती है। लेकिन प्रभा जैसी स्वतंत्र

स्वावलम्बी स्त्री की स्थिति भी इससे कुछ भिन्न नहीं है। विवाह करके एक पुरुष के साथ आजीवन बंधन युक्त होने के बजाय प्रभा अपनी स्वेच्छा से बिना विवाह किए एक विवाहित पुरुष से संबंध स्थापित करती है, अपनी कार्यक्षमता के बल पर एक सफल व्यापारी महिला बनती है लेकिन इसके बावजूद डॉ. सर्राफ उसे अपनी संपत्ति 'अपनी चीज़' समझते हैं, उस पर और उसके 'अर्थ' पर भी अपना नियंत्रण रखते हैं। इस संबंध में प्रभा लिखती हैं–'व्यापार मैं कर रही थी मगर पैसे का कंट्रोल डॉक्टर साहब कर रहे थे। कहाँ कितना पैसा लगाना है, किसके पास कितना रुपया जाना है, इसका निर्णय वही लेते थे। मेरी भी उनके प्रति शिकायत बढ़ रही थी। इतनी मेहनत करती हूँ, इनके परिवार को इससे फायदा होता है, इनका छोटा बेटा इस काम में लगा है, उसका एक सुंदर भविष्य बन रहा है। लाखों–करोड़ों वाला भविष्य। कहाँ से कहाँ हम सब पहुँचेंगे, क्या इस उपलब्धि की कोई कीमत नहीं? मेरी उपलब्धियों को आखिर किसलिए हल्का किया जाता है?'[8]

आधुनिक समाज में परिवार का आर्थिक आधार मात्र पुरुष ही नहीं होता। महिलाएँ उत्पादन के हर क्षेत्र में पुरुष का साथ देती हैं किंतु उसके सहयोगों को नजर–अंदाज कर दिया जाता है और केवल पुरुष को ही कमाऊ अर्थात् कमाने वाला माना जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि अर्थोपार्जन में नारी की अतिरिक्त भूमिका रहती है। वह पुरुष से कहीं अधिक श्रम करती है किंतु उसके श्रम का सही मूल्यांकन नहीं होता और उसका शोषण होता रहता है। चाहे नौकरी पेशा महिलाएँ हों या खेतिहर मजदूर महिलाएँ, उन्हें शोषण की दोहरी चक्की में पिसना पड़ता है। प्रभा खेतान बताती हैं 'लेकिन नहीं मैं एक औरत थी ... औरत के आर्थिक अवदान को नकारने की परंपरा रही है। पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है, फिर मुख्यधारा में यदि उसे स्थान दिया जाता है तब उस स्त्री को या तो अपवाद मानकर पुरुष वर्ग अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है, या फिर उसे परे धकेल दिया जाता है।'[9]

परंपराओं को नकारने वाली रमणिका गुप्ता, समाज में अपनी अलग पहचान बनाना चाहती हैं। वे लिखती हैं 'इतना ही नहीं, अपनी अलग पहचान बनाने की धुन मुझमें इतनी तीव्र हो गई थी कि अगर किसी समारोह का निमन्त्रण–पत्र मेरे नाम पर न आए तो मैं प्रकाश के साथ श्रीमती वी.पी.गुप्ता बनकर जाने से इनकार कर देती थी। "मुझे लोग मेरे कारण पहचानें, प्रकाश की पत्नी होने के कारण नहीं"– मेरे मन में यह भावना अति तीव्र हो गई थी।'[10] और इसीलिए अपने स्वयंसिद्धा बनने के संकल्प को पूरा करने के लिए वह अपने पति और बच्चों को छोड़कर स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाने वाली संस्थाओं को चलाने के लिए धनबाद में अकेले रहने का निर्णय करती है।

भारत का जातीय मानस आसानी से जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री की स्वतंत्रता को स्वीकार करने को तैयार नहीं था इसलिए जैसे– जैसे वो अपने बल पर आगे बढती गयी वैसे –वैसे उसका हर क्षेत्र में सामंतवादी और पुरुष मानसिकता से टकराव भी होता गया ।राजनीति और समाज सुधार के क्षेत्र में अपने कार्यों और अनुभवों को बताती रमणिका कहती है कि 'राजनीति में आए नेताओं का औरतों के प्रति अजीब–सा रवैया होता है। रमणिका ने अपने अनुभव से जाना है कि राजनीति और समाज–सेवा में आत्मविश्वास, हौसला, निडरता और हठ जरूरी चीजें हैं। एक औरत को आगे बढ़ने के लिए 'थेथर' होना भी जरूरी है। 'थेथर' का मतलब संवेदनारहित नहीं बल्कि पूर्णतया संवेदनशील होते हुए विपरीत स्थितियों में डटे रहना है– आरोपों, कलंकों, घटनाओं–दुर्घटनाओं तथा ज्यादतियों को झेलते हुए, अपने रास्ते चलते रहना और संकल्प–शक्ति तथा इच्छा–शक्ति का बल बनाए रखना ही है। इसका मतलब है खुद को अपनों की बेरूखी सहने को भी तैयार रखना, हँसते–हँसते कुत्सित व्यंग्य, कुटिल मुस्कानें, द्विअर्थी वाक्य पचाने की आदत डालना और कभी–कभी दूसरों के वाक्यों को उन्हीं के खिलाफ मुहिम छेड़ने के लिए उछालना। पीठ थपथपाकर बहादुरी का वास्ता देने वाले भी बहुत मिलते हैं राजनीति में– खासकर औरतों को। उनकी नीयत को पहचानना और सब सुनकर समझकर, अपने फैसलों पर अडिग रहना ही अगर 'थेथरपन' है तो वह राजनीति में स्त्रियों के लिए लाजिमी है।'[11]

आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै" में एक ग्रामीण अल्पशिक्षित महिला होकर भी मैत्रेयी की माँ कस्तूरी अपने विचारों और कार्यों से अग्रगामी हुई। कठिन परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए उसने समाज में एक मुकाम हासिल किया। कस्तूरी ने शिक्षा का सहारा लेकर परंपराओं और रूढ़ियों को बहुत पीछे छोड़ दिया। परंपराओं को धत्ता बताकर अपनी बेटी के लिए वह रिश्ता स्वयं देखने जाती हैलेकिन अपने प्रयासों से अग्रगामी हुई कस्तूरी को पाठक जैसे लोग अपमानित करके ये जता देते हैं कि शिक्षा के बल पर वो और कुछ भले कर ले लेकिन पुरुष की बराबरी नहीं कर सकती ।

जैसे जैसे स्त्रियाँ आगे बढ़ रही हैं वैसे वैसे उनके शोषण की संभावनाएं भी बढ़ गयी हैं । कस्तूरी महिला मंगल की सदस्य रही है लेकिन मैत्रेयी ने महिला मंगल के कार्य को अपनाने के प्रति कभी रुचि नहीं दिखलाई क्योंकि उसने 'महिला मंगल' के कार्यों और उससे जुड़ी महिलाओं की स्थिति को नजदीक से देखा और उसे इस संस्था से कटु अनुभव ही प्राप्त हुए। 'महिला मंगल' की महिलाओं की स्थिति को उजागर करते हुए मैत्रेयी अपनी माँ से कहती है, "मेरा हश्र मुझे मालूम है। तुम पाठक जैसे 'भूत-पिशाच' से अपमानित हुई हो जो असहनीय है। मैं अब तैयार होती हूँ तुम्हारे हैडक्लर्क सारस्वत के स्वागत को, जो तुम्हारी तरक्की की रिकमंडेशन डी.पी.ओ. साहब तक पहुँचाने आया था। साथ ही, मेरे कमरे में ठहरने का हक भी लाया था। माँ मैंने बताया नहीं कि मैं उससे बड़ी रात तक जूझी थी और फिर कमरे की मालकिन बाई की मदद से छूटकर कमरे के बाहर हो गई थी। बाई ने तुमको हजार गालियाँ दी थीं माँ और सारस्वत मुझे गालियाँ देता हुआ कमरे से बाहर हो गया था।'[12]

कस्तूरी से मैत्रेयी तक स्त्रियों की स्थिति बहुत नहीं बदली है । साहित्य के क्षेत्र में अपनी जगह बनाने केलिए मैत्रेयी पुष्पा को जो धक्के झेलने पड़े वो पुरुष वर्चस्व में सेंध का नतीजा ही थे । वे चिंता व्यक्त करती हैं "साहित्य का क्षेत्र गुलामी के अड्डों और आपसी कुश्तियों के अखाड़ों से ज्यादा क्या है ? मैं चिड़िया की तरह उड़ने के लिए आकाश खोजने आई थी ,जगह-जगह पिंजरे रखे हैं । मेरे पंखों का क्या होगा?"[13] घर और बाहर की लड़ाई में वो हारी हुई नज़र आती है "बेटियां भी नहीं समझ पाएँगी कि माँ के लिए लेखिका के रूप में साहित्य का लोकतंत्र कितना सामंतवादी है और घर में पिता का पति रूप दिन पर दिन संस्कारों से ऐसा ग्रस्त हुआ जाता है कि पुरुष वर्चस्व के वे कठोर सेनापति अपने अनुशासन में प्रतिबद्ध ..."[14]

स्त्रियाँ समाज में पहले दर्जे पर आना चाहती हैं ,इसके लिए वे सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर आगे तो बढ़ रही हैं मगर पहले दर्जे तक पहुँचने की ये यात्रा बेहद कष्टपूर्ण है । इस यात्रा में वह स्वयं से, परिवार और समाज से टक्कर ले रही है और पितृसत्तात्मक समाज अपनी पुरजोर कोशिश कर रहा है इनके बढ़ते क़दमों को रोकने की ।

तहमीन दुर्रानी की आत्मकथा "मेरे आका"उसके व्यक्तित्व के रूपांतरण की कथा है। आत्मकथा के अंत में वह कहती है-"लेकिन अगर मैं बेगम मुस्तफा खर नहीं थी, तो फिर मैं थी कौन? मेरे बचपन की तहमीना दुर्रानी अब मेरे लिए अजनबी थी, एक भ्रमित नन्हीं लड़की थी जिसके कद से अब मैं ऊपर निकल चुकी थी। मैं उससे कोई नाता नहीं जोड़ पाती थी। क्या मेरे अंदर कोई नई तहमीना दुर्रानी थी, जो ज्यादा उम्रदराज, ज्यादा दु:खी, लेकिन ज्यादा समझदार भी थी।'[15] अपनी पहचान को बरकरार रखने के लिए ही उसने परंपरागत खामोशी को तोड़ते हुए अपनी आत्मकहानी लिखी और मुस्तफा के द्वारा किये गए अपने अपमान के जवाब में कहा-'देखो मुस्तफा, अब दुनिया जल्दी ही तुम्हें सिर्फ तहमीना दुर्रानी के भूतपूर्व पति के रूप में जानेगी।'[16] और तहमीना अपने आका को पछाड़ कर आगे निकल जाती है ।

मुस्तफा की आजादी के लिए राजनीति में प्रवेश करने वाली तहमीना अपनी एक अलग पहचान बनाती है। वह मानती है कि 'यह मेरे लिए एक बड़ी उपलब्धि थी कि मैंने ऐसे नए रिश्ते बनाए थे जो मुझ पर मुस्तफा ने नहीं थोपे थे। ये

लोग मुझे मेरे असली रूप में देखते थे, किसी राजनीतिज्ञ के पुछल्ले के तौर पर नहीं।'[17] मुस्तफा को जेल से आजाद कराना तहमीना की एक बड़ी सफलता थी और लोगों ने उस सफलता का श्रेय तहमीना को दिया भी।

हमेशा अपने शौहर और अपने परिवार वालों के प्यार और सम्मान को तरसती तहमीना उस क्षण को अपने जीवन की एक बड़ी अहम सफलता और अविस्मरणीय पल मानती है जब "मेरे घर वाले मुझे तहमीना खर यानी उस औरत के रूप में देख रहे थे जिसने अपने शोहर को आजाद करवाने के लिए एक निर्मम और अंततोगत्वा सफल लड़ाई लड़ी थी। मैंने एक ऐसी शख्सियत बना ली थी जो उन्हें प्रभावशाली लग रही थी।'[18] औरत को बांदी समझने वाला मुस्तफा तहमीना को राजनीती में केवल अपने लाभ के लिए आगे बढ़ता है लेकिन इसी दौरान तहमीना अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहचानती है ।

निष्कर्ष : उपर्युक्त आत्मकथाओं में हम देखते हैं कि ये वे स्त्रियाँ हैं जिन्होंने शिक्षा,राजनीति साहित्य और व्यावसायिक क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है । इन्होने यह सिद्ध करके दिखाया है कि दोहरी जिम्मेदारियां निभाते हुए भी ये किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं हैं । समाज के विकास में उनकी भूमिका पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं है ।लेकिन स्त्री को समाज में पुरुष के बराबर का दर्जा तभी मिल सकता है जबकि स्त्री को दोयम दर्जे का समझने की मानसिकता से पुरुष समाज मुक्त नहीं हो जाता ।

सन्दर्भ सूची

1. अन्य से अनन्या –प्रभा खेतान पृ. 170
2. वही पृ. 210
3. वही पृ. 212
4. एक कहानी यह भी –मन्नू भंडारी पृ. 49
5. वही पृ. 49
6. वही पृ. 88
7. वही पृ. 66
8. अन्य से अनन्या–प्रभा खेतान पृ. 211–212
9. वही पृ. 212
10. हादसे –रमणिका गुप्ता पृ. 26
11. वही पृ. 245
12. कस्तूरी कुंडल बसे –मैत्रेयी पुष्पा पृ. 79
13. गुडिया भीतर गुडिया–मैत्रेयी पुष्पा पृ. 222
14. वही पृ. 224
15. मेरे आका –तहमीना दुर्रानी पृ. 353
16. वही पृ. 360
17. वही पृ. 272
18. वही पृ. 315